मृग और तृष्णा



हरिनारायण व्यास



उदय प्रकाशन

पूना

मृग और तृष्णा

(हरिनारायण व्यास)



प्रथम संस्करण
वसंत पंचमी, ३ फरवरी १९६८



सौ. लीला दिगंबर कारंजकर
नवीन मुद्रणालय,
८१६ रविवार पेठ, पूना २.
द्वारा मुद्रित



सेलेस्टिनो फर्नांडीस
४९८ सेंटर स्ट्रीट, पूना १
द्वारा प्रकाशित



मूल्य रु. ५-००

आमुख

हरिनारायण व्यास का पहला कविता-संग्रह 'मृग और तृष्णा' आज पढ गया। महाराष्ट्र की तीर्थ-यात्रा करते हुए आळंदी और देहू-दर्शन के बाद आज पूना एक दिन ठहरना हुआ। यह योगायोग की ही बात थी कि मेरे पच्चीस वर्ष पुराने विद्यार्थी और अब मेरे मित्र, हिन्दी की नयी कविता के एक सशक्त, सूक्ष्म संवेदनावाले कवि का यह संग्रह मैं एक साँस में पढ गया और पढकर परम-आत्मिक सन्तोष की अनुभूति मुझे हुई। वह क्यों हुई इसी का विश्लेषण नीचे की पंक्तियोंमें है।

हरि व्यास की कविता में एक गहरा दर्द है, पर पीड़ा का प्रदर्शन नहीं है। यह कविता आधुनिका है, अलंकरणहीना है, परन्तु वह प्रगल्भा, अनावश्यक रूप से तिक्त और प्रदर्शनप्रिया आधुनिकता 'वादिनी' नहीं है। इस कविता में संयम के साथ आत्ममन्थन, सकेन के साथ गहरी युगीन व्यथा का चित्रण है। कवि में आक्रोश और चीख और विकृति के प्रति आसक्ति नही है।' मूलतः मालवे की सौंधी नाम मिट्टी का सौन्दर्य-बोध वहाँ कहीं न कहीं हरि व्यास की कविताओं को प्रकृति से बाँधे हुए है। कृति और आकृति वहाँ एकाकार है। बनावट कहीं नहीं है। यह अकृत्रिम सहजता उसका पाथेय है।

हरि व्यास को कठोर और कडुए जीवन-संघर्ष में से गुज़रना पड़ा है। घाट-घाट की खाक छाननी पड़ी है। जगह-जगह का पानी पीकर महाराष्ट्र में उसे एक 'तप' बिताना पड़ा। मध्यप्रदेश-मालवे को यह शाप है कि वहाँ की प्रतिभाएँ उस भू-प्रदेश के बाहर जाकर ही कहीं 'नवीन' मुक्ति-बोध प्राप्त करती हैं;- कहीं 'अनागता की आँखें' देखती रहती है, कहीं 'स्वप्न-भंग' का उन्हें एहसास होता है और कहीं 'वनपाखी, सुनो' कहते प्राचीन और नवीन, परम्परा और विद्रोह के संगम पर वे छटपटाती रहती हैं। यह आत्मनिर्वासन मध्यप्रदेश के कवि की नियति है। सामन्ती राजे-रजवाड़ों की दुनिया में से राष्ट्रीय संग्राम और नव-समता के द्वंद्वात्मक संघर्ष से उभरकर, स्वराज्य आते-आते देश-देश की गलियाँ छानने का यह 'सद्-भाग्य' (?) उस कवि को मिला। अनुभव उसका समृद्ध हुआ और मिट्टी के प्रति ममता, उसकी ग्रामीण जीवन की सरलता के प्रति ललक बराबर बनी रही। हरि व्यास की कविता का मृग और 'मैं' ऐसा महानगर की अमानवीयता के हिरण से-विद्ध है।

परन्तु हरि व्यास में कहीं भी पुनः प्रतिक्रियावादी प्राचीन व्यवस्था की ओर भागने का आग्रह या किसी आध्यात्मिक कुहेलिका मे प्रश्रय लेनेका पलायनवाद नही है। उसकी दृष्टि स्वच्छ और निर्भर है। वह जानता है कि यह टूटी हुई दुनिया फिर एकसंध नही होने वाली है। 'आभाळाचा तुटला सांधा' मर्ढेकर ने कहा था, बुद्धदेव बसु 'जंग खाये हुए कीलेका गान' गाते है। यह हरि व्यास की विपुल आशावादी जिजीविषा मे निष्ठा वाली संस्कारमयी कला ही है कि वह आधुनिकतम या साठोत्तरी पीढीके 'अ-कवि' योंकी भाँति जीवन से पूर्णतः निराश नही है। बीभत्स विकृतियो का कीचड वह पागलकी तरह छानता नही बैठता। महानगर की क्रूरता मरुस्थल की मरीचिका का उसे भान है। पर उसका ध्यान उस बालू से अधिक तृष्णा पर है। मजाजने कहा था कि अगर यही 'गुनाहे-आदम' है तो 'गुनहगार हूँ मैं'; गालिबने कहा था कि "मौत से पहले आदमी, गम से निजात पाये क्यों?"

हरि व्यासकी कविता की विशेषता यही है और वह उसे मुक्तिबोध की कविता के सन्निकट लाती है, कि वह दर्दको वैयक्तिक सीमाओ से घिरा हुआ नही मानता। वह राजकमल चौधरी की तरह 'मृत्यु प्रसंग' के लिए उत्सुक आत्मपीड़क आत्म-हत्यावादी नही है, न वह उसे 'अज्ञेय'वादी नव्य अध्यात्म मे खोनेके लिए बाध्य करता है— वह उसको 'रोमांटिसाइज' नही करता और इसीमे उसके कवि की सर्वसाधारण के सुख-दुःख के साथ सहानुभव और सह-सहन की विशेषता है।

हरि व्यास की कविता के अन्य उपकरण मध्यवित्त वर्ग का दैनंदिन जीवन की कठिनाइयों से, संस्कारो की शुचिता और मर्यादाशीलता मे कुचलनेवाले व्यक्तित्व के 'कलियोंके निश्वास' जैसे भीने, सुगन्धमय परन्तु आर्त ऐसे अनुभूति-विश्व से लिये गये है। हरि व्यास के अगले काव्य संग्रह मे वह इन 'भूल बंगलों' से बाहर निकल आएगा और अधिक प्रभावी रूप से जीवन-संघर्ष की आजकी भयानक तीव्रता को व्यक्त कर सकेगा ऐसी मुझे पूरी आशा है। यह केवल आशीर्वाद के नाते मैं औपचारिक रूप से नही कह रहा हूँ पर 'मृग और तृष्णा' में इसके चिह्न स्पष्ट नजर आते हैं—'एक अदना' के व्यंग्य मे, 'श्रवणके पिता के प्रलाप' में, 'रातरानी' 'शहर वालों से', 'साइन बोर्ड' आदि मे व्यक्त जीवनेच्छा मे और 'बाशिन्दे' और 'वह जो तुमसे बाहर है', 'सिलसिले और संदर्भ' की 'आउट साइड' वाली साक्षी वृत्तमे। मैं हरि व्यास की कविता मे बहुत संभावनाएँ देखता हूँ—नवीन और पुरातन का यह घोर द्वंद्व उस की कविता की पीठिका है।

पूना : ५-१-१९६८ — प्रभाकर माचवे

प्रकाशकीय

हम श्री हरिनारायण व्यास का प्रथम काव्य संग्रह लेकर हिन्दी साहि जगत् में उपस्थित हो रहे हैं। आज हिन्दी में अनेक प्रकार की रचनाएं प्रकाशि हो रही हैं– कविता के अलावा ठोस कविता, अकविता, साठी कविता, भविष्य कविता आदि। किन्तु इन सबमें मानवकी विकृतिका ही चित्रण अधि मिलता है। मानव जीवनका एक उज्ज्वल पक्ष भी होता है जो उसे जीवनसे पलाय के लिए नहीं बल्कि उसे संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है। इसी पक्ष को प्रस्तु करनेके लिए श्री हरिनारायण व्यास का यह संग्रह हम प्रकाशित कर रहे हैं।

कविताएँ आपके सामने हैं। आप स्वयं देखेंगे कि इन कविताओं का स्वर क है। हमने तो इन्हें प्रकाश में लानेका, कविके संदेश को आप तक पहुँचाने का का किया है। प्रकाशन क्षेत्रमें हमारा प्रथम पुष्प आपके सामने है– इस विश्वास के सा कि इसकी गंध न केवल हिन्दी जगत को पसंद आएगी बल्कि इसकी गंधसे नया जीवन, नयी चेतना और नयी अनुभूतिका अनुभव करेगा।

मुद्रण-संबंधी कुछ त्रुटियाँ रह गयी हैं जिनका परिहार अगले संस्कर में पूर्ण रूपमें किया जाएगा।

हमारे कई हितैषियों और मित्रोंने इस संग्रह के प्रकाशन में सहयोग दिया है जिनके नामोंका उल्लेख कर उनका आभार मानना केवल औपचारिकताका प्रदर्श मात्र होगा।

आशा है, हिन्दी क्षेत्रके बाहर के इस प्रकाशन का हिन्दी में समुचित स्वाग होगा और इस प्रकारके प्रयासोंके लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

पूना

– प्रकाशक

— सूची —

श्रद्धामयी माँ
और मामा को
जो अब नहीं हैं।

— हरिनारायण व्यास

यक्ष का संदेश

सदियाँ बीतीं, वर्ष मिट गये।
हुए कई वर्षांत शाप का अन्त नहीं
अब तक आया।
बदल गये इतिहास,
रामगिरि, रातें, ऋतुएँ,
किरनों में खोये-खोये-से बदले पूरब,
बदले पश्चिम।
बदल गये सब जीवन-यापन-मानदंड
जन-जीवन बदला।
विरह-मिलन के संवेदन के
अर्थ बदलते गये।
आज सब बदल गये,
किन्तु न बदला शाप,
न बदला गेरू-अंकित चित्र तुम्हारा।
देख न पाया उसे आज तक
रुकी न आँसू की धारा।
वह शारदीय पयस्नात,
लगाये केसर कुंकुम तिलक
तुम्हारे मिलन-स्मरण का प्रवहन बन कर
चली गयी हर बार
अश्विनी राका रजनी।
प्रौढ़ा शिशिरा लाठी टेके शिखर चढ़ी औ'
जनक-सुता के स्नान-कुंड का परिमल माथे लगा
रामगिरि तीर्थ स्नान कर
नव अनुभव पाथेय लाद कर सौ-सौ फेरे लगा गयी।

थका हुआ संन्यासी ऋतुपति,
पहिन पीत काषाय, [illegible]

प्रणय की साखी गाता
चला गया शरणागत युग के।
नव शिरीष के सुमन बन गये
पग-पग जलते अंगारे।

वे निदाघ के लंबे दिन-से हुए कई वर्षान्त
शाप का अंत न जाने कब होगा ?
फिर आया आषाढ़-दिवस
फिर घिरे क्षितिज में नीलांजन घन।
पीत, पत्र, तरुत्यक्त, तृषित तन
नव उमंग में उड़े भेटने घन कजरारे।
ऊपर उठने लगे खेत के सूखे बिरवे
तरु तन्वगिनि टहनी ने भी
उठा दिया मुख मेघ-अधर-रस-चुंबन-सुख आकांक्षा से।
लगे झूमने रक्त सुमन सेमल के तरु के
उड़े रुई के गुब्बारे।
फिर आया आषाढ़-मेघ धरती को देने मिलन गीत
लेने को मुझसे स्नेह-सिक्त संदेश तुम्हारा।

मैं क्या दूं संदेश ?
शाप का अन्त न आया
कई युगों से तुम्हें न पाया
मैं वन्दी हूँ यहाँ शिखर पर
तुम बैठी हो वातायन में
वही जीर्ण कृशकाय विरहिणी प्रोषित-पतिका

देख रही हो दूर क्षितिज में
मेघ-पंथ पर मेघ-दूत को।
टूट चुके हैं स्वप्न
गले की माला के मोती-से सुंदर
गिरे धरा पर, मिले धूल में।

आज दुखी मन अंधकार से
घिरे गगन में भटक रहा है
ढूंढ रहा विश्वास तुम्हें फिर पा लेने का
जिसे वर्ष के उत्तरीय में बाँध चुका था।
फिर घन आया किन्तु न आया मिलन।
शाप का अंत न जाने कब होगा?

प्रताडित आत्मा का गीत

ये सब नीचे गिर रही है
बर्फ का मुकुट पहने हुए
आदिम पहाड़ों की चोटियाँ।

ये सब नीचे गिर रहे है
कीर्ति-स्तम्भ
पाषाण-मूर्तियाँ
बगीचे।

मैं खड़ा हूँ सबसे नीचे
इस भूचाल ने
मुझे चोटी तक पहुँचने नहीं दिया
मैं अपनी पगडंडी के साथ लड़खड़ाता रहा
अँधेरे में स्यार-सा हूकता रहा।
मरसिये गाता रहा
बड़े पैमानों पर फिट होने के लिए
रबर-सा तनता रहा।
टूटता रहा।
बनता रहा।
रोता रहा।
गाता रहा।

मैं उन सब की पुकारें सुनता हूँ,
जो अंधे कुओं में से चिल्लाते हैं,
'अंधा कुआँ जिंदगी है',
मैं उन सबकी चीत्कारें सुनता हूँ,
जो मुर्दों के कंठों से गाते है
मौत ही एक खुशनुमा
सादगी है
मुझे इन सबसे कोई वास्ता नहीं है।

मेरे लिए सब कुछ नया है
इस भूचाल में लड़खड़ाती हुई नजरों से भी
सब कुछ नया है।

ये हवा
ये फूल
ये भागनेवाली रंगीन तितलियाँ।
मैं वक्त के मुर्दाघर में
अपना दम नहीं घुटने दूँगा
मुझमें जीने की हविश है
इसलिए जिन्दा रहूँगा।
मेरे पुरखों को कौंधती बिजलियों के डर ने मार डाला
वे खुशबू भरे खिलखिलाते
बियावानों में
सूखी मालाओं में लटके रहे
तावीज की तरह
या
सूली पर चढ़े हुए शहीद की तरह
मुझे उनसे अब कोई वास्ता नहीं है।
मैं इन खुले हुए मैदानों में
हरियाली की तरह फैल जाऊँगा
जर्रे-जर्रे को आमों की तरह निचोड़ूँगा
रस को पी जाऊँगा
मुझमें जीने की हविश है
इसलिए जिन्दा रहूँगा।

ओ ठंडी रोशनी
तुम काँटे से झगड़ती
मछली हो।
भूखे जंगल के किनारों तक
पानी पर लकीरें बनाती

मुझे पुकारती
तड़पती
खिची चली आती हो।
मुझे मत पुकारो
मेरे लिए
भाषा का अर्थ
भंजित हो चुका है
मैं कोई भाषा नहीं जानता
मेरे सामने
पर्वतपात का यह नजारा
समझने के लिए काफी है
मुझमें जीने की हविश है
इसलिए मैं इस लड़खड़ाती पगडंडी पर
लड़खड़ाता जिन्दा रहूँगा।

उपेक्षित दृश्य

हर बार दर्पण टूट जाता है
अपनी आत्मा का
(मेरा) अस्तित्व मिटाने के लिए।
और
मैं,
हर बार
हाथ से गिरने वाले
ठोकर खाने वाले
या
जान-बूझ कर तोड़े जाने वाले
दर्पण के टुकड़ों में
अपनी समग्रता
अपनी अखंडता
उसके असंख्य रूपों में
फैला देता हूँ।
दर्पण टूट जाता है
लेकिन मैं विभाजित नहीं होता।
मैं असंख्य टुकड़ों में भी
नहीं होता हूँ
जो समूचे दर्पण का आत्मीय था।
टूटने का दुख दर्पण का है।
मैं दर्पण की अविभाजित कुंठा हूँ
और दर्पण है मेरी टूटी हुई पीड़ा।

काँस, साँझ, सूरज और हम

काँस के सफेद तुर्रे लगा कर घास
आसपास खड़ी हो गयी।
तुम न जाने किस तन्द्रा में सो गयी
या किसी तन्द्रा से जाग गयी।
कदाचित् तुमको पहली बार मालूम हुआ कि
प्यार निरर्थक और व्यर्थ नहीं होता।
तुमने पहली बार समझा कि
सूरज केवल प्रकाश ही नहीं बरसाता।
वह सबके लिए
नये सपने
आश्वासन की ऊष्मा
और प्यार का अमृत भी बरसाता है।
वृन्त पर फूल
फूलों में सुगंध और फल
फलों में बीज
और बीज में चेतना भी बोता है।
साँझ में रंग
रंगमें रम्यता
रम्यता में विस्मय
और विस्मय में
किसी सत्य को प्रतिबिम्बित करता है।
यही वह सत्य है जिसकी तन्द्रा में तुम सोयी हो।
या जिसके अभाव की तन्द्रा से तुम जागी हो।
जीवन की जड़ें दलदल में है
ठेठ पृथ्वी के
देश-काल-मान
और दिशाओं की ऊँचाई

और अस्तित्व की गहराई के छोर तक
वे फैली हुई हैं।
किन्तु हम-तुम तो कमलके फूल के समान
इस दलदल से सुगंध खींचते हैं
पवन के प्राणों में भरते हैं
और प्यार बरसाते हुए
इस शरद के सूरज को देखते है।
जीते है
और हँसते है।

अनुभूति की टहनीपर

सबकी यात्रा हमारी ओर है।
ये पानी भरे भारी बादल,
यह उनींदी चाँदनी
ये सूरज की सप्तरंगी किरनें
ये हाड, मांस, मज्जा, प्राण,
वेदना, चेतना, संवेदना
स्वप्न और स्नेह
सब हमारी ओर आते हैं
हम किसी की ओर नही जाते।
आसमान हमें छूने नीचे तक झुक आता है
दिशाएँ हमें अपनी बाहुओं में भरने को
दौड पड़ती हैं।
समुद्र की लहरें हमसे मिलने के लिए
किनारे पर पछाड़ खा कर रह जाती हैं।
किन्तु हम अपनी जगह नही छोड़ते।
यह व्याकुलता
मेरे और तुम्हारे बीच की
वह संदेशवाहिनी विद्या है
जो तुमको तुम्हारे
और मुझको मेरे अस्तित्व की अनुभूतियों से
परिचय कराती है।
इस दिगदिगन्त की अनन्त आत्मा से
स्रवित होने वाले प्रकाश के महापूर
की मंझधार में हम बहते नही
और बह कर अपने-आप को आश्रय-विहीन नही समझते।
जो हमारे आस-पास हैं वे सब रंगीन सपने हैं।
ये सपने, हमारे लिए
नये-नये रूप धरते हुए

हमारे अस्तित्व की अनुभूति के
आवास को सजाने के लिए
एक साथ हमारी ओर झुक रहे है।
यह अनुभूति का आवास भी हमारे पास आया है
हम उसके पास नही गये।
उधर देखो रगो की चादर ओढ़ कर
सुगंध ने फूल का रूप धारण किया
और वह झुक कर हमारे मन के गलियारे
घूमती हुई हमारे पास
दौड़ आयी।
हम उसके पास नही गये।
हम अनत में
स्थिर
जागृत
अस्तित्व की अनुभूति पर
टिके हुए
वह सब देख रहे है,
समझ रहे है।
सुन रहे है, गुन रहे है।
जो केवल हमारे लिए
अपने अस्तित्व की अनुभूति का
आनंद व्यक्त करता हुआ
एक चिरंतन व्याकुलता के सुख मे
घुला जा रहा है।

होश

कोई अंगारों को कचरे की टोकरी में
डाल भी दे तो क्या
आग आग है
वह बढ़ेगी
अवांछित परित्यक्त को जलाएगी सबकुछ
खा जाएगी।
आग आग है
वह हर जगह काम आएगी।

जमीन और आसमान के
गणित और रेखागणित
ऋण गुणन फल विभाजन
कागज पर उलझाते है
आत्मा इन अपनी आकृतियों के भुलावे से
होश मे आने के लिए आजतक
उलझी है और
अब हारकर उसने अपनी उलझनो को
टोकरी में डाल दिया है।
लेकिन आग के संकल्प
किसी अज्ञात आघात से
जन्म लेगे और
ये सब उलझनें 'चट' कर जायेंगे
आत्मा की बेहोशी दूर करने
सही होश
अपने आप चला आयेगा।

साथ साथ

मैं तुम्हें किन किन माध्यमों से ग्रहण करूँ?
तुम
शब्द और अर्थ में
एक अनवरत इकाई का प्रवाह हो।
स्वप्नों और सत्यों में
तुम्हारे बेहोश अहंकार को उठाये
मैं हर एक मसीहा के पास जाता हूँ।
अपनी ग्रहण की अक्षमता बताता हूँ।
मसीहा
अपनी अक्षमता मेरे कंधे पर
लाद कर कहता है
"इसे भी ले लो
यही दर्द की दवा है"।
मेरे सिरका बोझ
कशमकश के साँचे मे ढल जाता है
मैं स्तब्ध हो जाता हूँ– और
तब तुम जाग उठती हो
एक थरथराती हुई बिजली की लपट-सी
कौंध उठती हो
मेरे परिवेश की हर दिशा को
जगमगा देती हो
मुझे अपने पैरों पर खड़ा करती हो।
कहती हो
आओ
हम फूल और फसल की बातें करें।

भावी

वर्तमानकालिक क्रियाएँ
संज्ञा सर्वनाम विशेषण
सब प्रतिक्रियात्मक
प्रक्रियाएँ हैं।
सब रूप को अरूप
स्थूल को सूक्ष्म बनाती हैं।

लंबी लंबी छायाओं के लिहाफ में
बेहोश दुबकी पड़ी अनजान संभावनाएँ
दुधमुंहे बच्चे।
बेईमान काला इतिहास पुरुष
इन बच्चों की चेतना से उभरता है
मिट्टी के कोमल शरीर से
जन्म लेते हैं गंडासे कीलें
गोलियाँ भाले बंदूकें और लेखनी
लोग जिनसे करते हैं
हत्या और आत्महत्या
कलम घिसते हैं मरते हैं।
बीज के छिलकों से
साँप की जिव्हाएँ लपलपाती हैं।

जन्मदाता क्षण
मरणदाता।
आवागमन की इच्छाएँ
मृत्यु की चादनी
शीतल चंदन।
परंपरा का प्रहरी चाँदी के वर्क के नीचे
सूखा पानके बीड़े-सा।

मात्र मैं ही हूँ

शब्दों के कठघरे से मुक्त
आवरणरहित
अर्थ
सुगंध की बंधी हुई गाँठ
कोई आये तो मैं पुनर्जन्मकी सुगंध से
नहला दूंगा ।
ये मेरी नौकाएँ
न जाने कितने वाक्य तैरती हुई
मेरे पास आयी है
धुंधले और गहरे
आदिम धुंधलकों को पार कर ।
मेरे अहंकार के प्रकोष्ठ में
अस्तित्व के सारी गुणात्मक अभिव्यक्तियाँ
शमित है
नया रूप पाने ।
काला इतिहासपुरुष और मै
हम दोनों यात्री है
बच्चों की
स्लेट की रेखाएँ
हमारे उलझे हुए रास्ते है
हम उलझते हुए
मंजिल ढूढ लेगे ।
पदचिह्न छोड देगे
किसी भी अपरिचित यात्री के लिए
जो चलने का निर्णय करेगा
चल देगा ।

अछूता सुख

तड़कनों से उभर आता है वहाव।
गहराई का
परेशान थका हुआ
रिसने लगता है घाव सतह का।

दरारें भर जाती हैं
गहराई की जिन्दगी
छलककर
फूट पड़ती है
अन्तराल को ऊपर लाने।
जैसे आँखें खुशीसे छलछला उठें
इधर उधर विखरी हुई रेखाएँ
सजीव हो उठती हैं
दौड़ पड़ती है
विखरा चित्र
बनाने।
जैसे गरीब के घर मेहमान आ जाये
अन्तरिक्ष से उतरती हुई सुबह
ताजी खुशबू से लबरेज
फूलों के झुंड
पौधों की पकड़ में
आ थमते है।
जैसे कोई इनाम दे जाये।
यह सब होता है।
लेकिन
यह भी होता है कि
डूबता हुआ आदमी
तिनके के भ्रम से मुक्त नहीं होता।

टूटा हुआ आदमी
मरने से डरता है
और
जिंदगी भर मौत जीता है।
निरर्थकता से परिवेष्टित
निश्चेष्ट
अनुभूतियाँ पीता है।
कुछ सजीव सचेष्ट
सिरहाने
जाग रहा है
अबाध मुक्त
अनछुआ।
उसका विस्तार
सड़कों को समेटे है।
जब पराजय से पीडित
अक्षरों रेखाओं
और
लयों के
पीले और उदास चेहरों पर
थकान उभर आती है
तब वह उनको छूता है
अर्न्तवाह्य सुहलाता है
पी लेता है
उनकी थकानें
फैलती हुई निरर्थकता
उतरती हुई
परवशता।

विरासत

हमारे क्षोभ में हँसते हैं
रेगिस्तान
वृक्षोंके नीचे
शिशिर के पत्तों के ढेर
साँझों के जंगली सुनसान।
क्यों कि हम
नदियों के विद्रोह
खनरो के डूबे हुए निशान
अपने आंसुओंमें रूपायित करते है
फसलों के उगने के वेग
जमीन तोड़कर बाहर आने की घुटन कै
मोती बनाते है हम
अतृप्ति को
तृप्ति के विस्तार के लिए
आसरा नहीं देते।
गिरता हुआ जल
जमीन पीती है
हमारे आंसू हम
अपनी विरासत के रूप में
बोतलों में
सजाते हैं।
रख देते हैं
अपने बच्चों के लिए।

एक मित्र से

मैं जानता हूँ तुम प्रियतम से कहीं
अधिक हो।

मेरे जीवन के अंधकार पर
उदित होनेवाली
तुम
वह चेतना हो
जिसने मेरे जीवन को
अपनी आत्मा बनाकर
मुझे अपने में रखलिया है।
मैं जानता हूँ तुम महत्तम से कहीं
अधिक हो।

क्योंकि जिस ऊँचाई पर
उठकर मैं हिमालय के शिखर पर
आच्छादित हो जाता हूँ
तुम उस ऊँचाई को अपनी गहराई
के अन्तस्तल से जन्म देती हो।
ओ, दिशाकाल की सीमाओं की
परिधिहीन सीमा
मैं जानता हूँ तुम महत्तम से कहीं अधिक हो।

मित्र,
तुमने अपनी असीमता से छूकर
मुझे मेरी सीमाहीनता से मुक्त कर दिया है।
मेरे
जिसमें अनादिकाल से छटपटाता
हुआ एक प्रश्नचिन्ह
अनेक शरीर पहनकर
इस जन्म तक चला आया है

इस छोटे-से क्षणका
उत्तर बनकर
तुमने
सारी नियति को
उसकी अभिव्यक्ति के माध्यमों को
सुंदर बना दिया है
सबको प्रश्नहीन कर दिया है।
मैं जानता हूँ कि तुम प्रियतम से कहीं अधिक हो
क्योंकि मैं तुमको अपने स्नेह की सीमाओं में
बाँधने से पहले ही
तुम्हारी अनन्त सीमाओं में समर्पित हो जाता हूँ।

घाटियों की ढलान पर

बूढ़ी घाटियों में
गूंज कर फैल जाती है
कुहरे की घुटनमयी चीत्कारें
अतृप्ति का रीतापन
शरीर की आदिम प्यास
अस्तित्व की बेबसी

बूढ़ी घाटियों में रेंगते हैं साँपों के झुंड
नयी सुबह के स्पन्दनों में खोजते हुए
अपनी पूर्ति
अपने उत्तर

रंगीन विचारों की मीनारों को
बरसातों ने धो दिया है।
दूर-दूर तक छितरी हुई हैं
दबावों की पर्तें
अलगाव की चोटें
विभक्तियाँ और खँडहर
इतिहासों की हत्या का कोई साक्षी नहीं रहा।
वर्षों से शवों के गर्भ में सुरक्षित नया जीव
प्रतीक्षा करता है
अपने जन्म की।
बीती हुई शताब्दियाँ ठिठक कर खड़ी है;
उनके पैर
जड़ हो गये है।
इस स्थिरता को आगे कौन ठेलेगा ?
कदाचित् हमारी छायाएँ।
हमें तो चलना है
चिह्नोंके सहारे नहीं

चिह्न छोड़ते हुए।
पीछे मुड़ कर मत देखो
इन बूढ़ी घाटियोंमें जड़ हो कर गिर पड़ोगे।
बस
दूर-दूर चलते रहो।
आगे-आगे, अलग-अलग।

असीम और अबाध समय की कृति
ये निराकार आकृतियाँ
मेरा अहंकार
मेरी उदासी
यही मेरा है।

नया साल

नर्स ने
नये वस्त्रों में लपेट कर
हजारों बच्चों के साथ
उसको भी ला सुलाया।

बिल्ली, मोर और कुत्ते
उस नये कंठ से भौंकने लगे।

मायूसियों की उमर लंबी हो गयी।
बच्चे की बंद आँखों में

सिर्फ सपनों का काजल लगा है।
पूत के पाँव पालने में मत देखो

वह अपने पिता के
घिसे हुए जूते
पहनने आया है।

सब से ऊँचे आदमी की प्रतीक्षा

यह शहर का अनजाना सूर्योदय
यह उठने-वैठने-खाने-पीने की तंगी
यह गहरी नींद की उपेक्षा
यह सबसे पहले जागने की बेबसी
यह सबसे बाद में सोने का भय

जीवन को स्वभाव है,
सब हमें भोगना है।
यही जिंदगी है।

सड़कों के कोनों पर
शोहदों के झुंड
नये मूल्यों के निर्माण के सदाशय से
गाली-गुफ्ता
छीना-झपटी
मारामारी में मस्त है।
नये मूल्यों को ले कर
सब युद्धरत है।

लेकिन वह आएगा
कदाचित् थकाहारा।
खाली हाथों ही
वह किसी वक्त आ जाए
हम सबसे ऊँचा आदमी।

उसके आने तक हमें
यह सब सहना है
यह शहर की सुबह अवांछनीय
यह रेगिस्तान की दोपहरी दसहनीय
यह उत्तरी ध्रुव का जाड़ा हयनीय

कंदराओं में चुपके से छिपने वाली साँ
गायब होनेसे पहले
हम पर गुर्रा रही है।

काना-फूसी

हलवाई का लड़का अफसर हो गया है।
बेचारा पढ़ा-लिखा न जाने कहाँ
क्लर्क बनता।
चलो अच्छा ही हुआ कि
उसे 'टेलीफोन'
'कॉल बेल'
और 'पेपरवेट' के खिलौने मिल गये
जी बहलाने के लिए।
उसे धन्धा विरासत में नही मिला
लेकिन वे सब विशेषताएँ मिलीं जो उसके बाप के
मस्तिष्क रूपी भुतहे मकान की गंदी गटरों में
तेजाब की तरह
कुंठाएँ बन कर बहती थीं।

छिनाल औरतों की आंखो की (मिर्च-सी) तेजी
चकलों से मिठाई खरीदने आने वाली
कुटनियों की बेबसी
और निराशा।

बंगलों में रहने वाले अफसरो की
आधुनिक मेमों की
नौकरानियों की राजभरी पोशीदा बेपर्दगी।
(ये सब उसके बापके आधी रात के ग्राहक हैं)

नौटंकियों की किताबों के
लंतरानियाँ हाँकने वाले हीरो की
कुर्बानियों-भरे वार्तालापों में डुबकी हुई
गाँव के छैलाओं की सपनों की दुनिया।
सब दुकान पर बैठे हुए
उसके बाप से मिले हैं।

वह अपने बाप के सूक्ष्म शरीर की
' ऐसेन्स ' है।
अब वह भी टेबल पर बैठ कर
बड़ा अफसर होने की फिकर में
आधी रात तक दूकान खोले रहता है।
पकौड़ी-सी नाक और कचौड़ी-से गाल
देख कर आपको मेरी बात का
यकीन हो सकता है।

रातपाली

एकान्त की आदिम सजीव पीड़ा को छूने
भटकती-चाँदनी अपनी संगमर्मरी उंगलियाँ
फैलाती हुई शहर से बाहर चली गयी है ।

एकान्त
शहर से निष्कासित है
गुण्डों के साथ साथ ।
दफ्तरों से निकलती हुई
राहों पर
फैल गये हैं
पारदर्शी अतृप्त मनसूबे
पाव-रोटी और पातल भाजी की तलाश में ।
सड़कों पर सोने निकल पड़े हैं, अनिकेतन
बेविस्तर
खानाबदोश
जिप्सी ।
(परिणामहीन प्रयत्न)
बरसाती अनाम पतंगे
खुली सड़कों पर खड़ी हुई
आधुनिक बिजली के आवरण से टकरा कर
टूट रहे हैं

दिन भर की सहेजी हुई भूख को कोई
अपनी नयी चप्पलों के साथ
सिरहाने रख कर सो रहा है
गाँव छोड़ कर
शहर आया हुआ मजदूर
नया-नया भिकारी ।

नायलॉन के सतरंगी पर्दों में
लपलपाती हैं
रेगिस्तानी तृष्णाएँ।
पाशवी मूर्खताएँ केंचुओं-सी रेंगती
बाहर आती हैं
दरारों से।
परिचितों के अपरिचित वियत कहकहे
सिर्फ सन्दर्भों के सहारे
निकटता के सुग से अभिभूत हैं
जगमगाते हुए कमरों में
कुत्ते, बिल्ली, साँप, अजगर, बिच्छुओं
चूहों और गिद्धों के युग्म
सोने की तैयारी में हैं
कपड़े बदल रहे है।
बीता हुआ दिन
एक युग था
जाती हुई रात सिर्फ लमहा है।
बिगड़ी हुई मशीनें
गलत परिणामोंका उत्पादन कर रही हैं।
कल सुबह
ऊँचे भाव पर
बेचने के लिए,
दूकानों पर भेज दिया जाएगा
यह नया उत्पादन
कल की नयी फैशन
नयी ईजाद
कल का
नया सत्य।

वापसी जो कभी न हुई

तुमने बिलकुल सच कहा
हमने जो कुछ भी अब तक सहा
वह बहिश्त का सुख नहीं
जंगली सूअर का
अकेलापन है।

हम हनुमानजी के मंदिर से
अपनी वासना के सुख की
फलकामना का
प्रसाद लेकर
शिकार के लिए निकल पड़े
आधी रात में
बम्बई की उन अनजान सड़कों पर
जिनको हम दिन भर
मटरगश्ती में रौंदते रहे।

पानी-सी बहती हुई आँखें
सामने देखती हुई बह गयीं।
हम गहराई में डूबकर जमीन की
तरफ धँसने लगे।
हमारे धनुषों से तीर छूटकर
हम पर ही लौट आये।
हम ही बींधे गये।

फिर भी लौट न पाये
बम्बई की उन जानी पहचानी
निर्लेप गलियों में
जहाँ पर हम लेखक मित्रों को
किराना भुसार माल की तरह
अपनापन तौलकर बेचा करते हैं।

सोये हुए हैं वासन्ती वर्ष

हारी सी यह शरद चांदनी
आकर कुर्सी पर धम्म से बैठ गयी।
सूने उदास और एकाकी
हिमाचल की चमकती हुई
सूरज की किरनों में
अपनी तपनी तपन ठण्डा किये हुए।

भीड़-से ऊबे हुए
इन मौसमी निर्झरों की
सुखद जागती-सी नींद।
यह पूनों की
अनिमन्त्रित चांदनी।

पीठ पीछे उन धुली हुई
अमराइयों में
सचेतन
सुख में
सशरीर स्वप्नों की
आन्तरिकता के स्पर्श में
समर्पित
सोये हुए है
वासन्ती वर्ष
जीवित समाधि लेकर।

शान्ति में अशान्त
अतृप्ति में परितृप्त
यह शारदीया
उन वर्षों का
कुर्सी पर बैठा हुआ विकेन्द्रित
हल्दिया सपना है।

यह तृप्ति की तृषा
मृगजल की तरह
जंगल जंगल भागती रही।
घर और आंगन में
पेड़ों और मुंडेरों पर
बादलों में या
बासी भिनसार में
यह
नये जन्म के बीज समझकर
बोती रही
चमकदार रंगीन बालू।
और आज
इस कुर्सी पर
इसको ही अंकुर फूट आये हैं।

श्रवण के पिता का प्रलाप

ओ पुत्र
तुम हमें न देखो
इन मासूम आँखों से।
हमने तुम्हें राह खोजने
और रास्ता देखने
के लिये लिया था।
हम थक चुके हैं
टूट चुके है
वहेलिये ने तीर
तुम को नही
हमें मारा है।
इस शिकायत के समय
मत देखो पथरीली नजरों से।

हमारी अनंत यात्राएँ
सामने खुली पड़ी है
नदीतीर और समुद्रतट की यात्राएं
मरुस्थलों और घने जगलों की यात्राएँ
भयानक जल-जन्तुओं और हिंस्र पशुओं के
जबड़ों में कौधती हुई
भय की बिजलियों के बीच की यात्राएँ।
इन सब दिन-रात, ऋतुओं और वर्षों के बीच
कभी न चुकनेवाली यात्राएँ
सब सामने बिखरी पड़ी हैं।

अब तक हम वर्षा, आतप और शीत के जाने पहिचाने
आक्रमणों के बीच से
यहाँ तक आ पहुँचे।
रात और दिन के संधिकाल में

म सारे जाने-अनजाने खतरों से
बचते बचाते हुए
अपनी थकान में
अपने गन्तव्य की निकटता का
उल्लास भरते हुए
चलते रहे
चलते रहे।
क्योंकि हमारी यात्रा का भार
तुम्हारे कंधों पर था।

किन्तु इस अज्ञात दिशासे
मारे हुए अज्ञात बहेलिये के
शब्दवेधी तीर का
यह कल्पनातीत
नितान्त अगम्य और अनपेक्षित
संधिकाल के आखेट का भय।
मनुष्य द्वारा मनुष्यता के आखेट का भय।
हम नहीं देख पाये।
हम क्यों नहीं देख पाये?

रात्रि,
नये प्रकाश का मंगल कलश
सिरपर उठा रही है
उन सब के लिए जो यात्रा समाप्त कर
निकट आ पहुँचे हैं।
हम प्रकाश के इस पर्वकाल में
दिशाहारा, गतिमूढ़
अज्ञात के प्रहार से चोट खाये हुए
मरणोन्मुख हैं
तुम्हारी मृत्यु से।
तुम इस प्रकार,

निश्छल, सुकुमार और भोली आँखों से मत देखो।
इन पथराई किरनों से अपने आपको खोजने
तुम कहाँ उतर गये ?
तुम्हारे शरीर के घावों ने
हमको विदीर्ण कर दिया है।

पुत्र
मरणोन्मुख के सामने परित्राण का मरण
समापन के सामने प्रारंभ का मरण
समाप्त होनेवाली पीढ़ी के सामने
नई पीढ़ी का मरण।
यह कितना दारुण है ?
यह हम सबसे पूछो
क्योंकि हमें फिर से जीने का भय सहना है
मृत्यु में रहना है।

एक अदृश्य आवाज़ से

उस दिन तुम किसी दूसरे का कष्ट सुनकर रो दी थीं।
और तब
सृष्टि का सारा रंग,
फूलों की पांखुरियों पर
आकर छलक पड़ा था।
प्रत्येक अणु में
सचेत हो जगमगा उठा था।
दिये की बाती में,
गीतों की रंगीन लौ,
थरथरा उठी थी
आलोक के वलय
रंगीन किरनों से आ गये थे।

उस समय किसी की पीड़ा
तुम्हारे आँसू बनकर कृतार्थ हो गयी थी।

आज तुम अपने दुःख से रोती हो।
हमारे बीच की दूरी एक बहुत बड़ा सच है।
मैं इस सचाई को ग्रीष्म के लंबे दिनों से
अथवा शिशिर की प्रदीर्घ रात्रि से
नहीं नाप सकता।
आसमान में उड़नेवाले जेट विमान की धुएँ की पूँछ-सी यह
एक अन्तहीन,
अशरीरी दूरी है।
यह संतप्त विवशता की पर्णहीन टहनी है।
शिशिर, वसन्त और वर्षामें
कभी भी इसमें कोंपले नहीं फूटेगी।

तुम्हारी आँखों से टपकते है
वे सपने जिनमें रंग भरा ही नहीं गया।

जो बोझ की गठरी
सिरपर सम्हाले हुए झर पड़ते है।
बीती हुई बात,
फटा हुआ एक रुपये का नोट है।
जो न तो विनिमय का साधन है
और न है संचित धन ही।
ये आँसू कहीं जानेवाली
अस्तित्व के कष्ट की मूर्तियाँ
तुम्हारे नेत्र-कमल के पत्तोंपर जमी हुई
ओस की बूदें
अब व्यर्थ हैं
तुम इनकी माला बनाकर
किसे सँवार दोगी।
हमने अपना तन-मन-धन
सुख-दुःख, आशा-आकांक्षा
राग-द्वेष, विरक्ति-अनुराग
बाहरी दुनिया को नीलाम कर दिया है।
मनुष्यता,
मुनादी के नक्कारे की आवाज-सी,
अदृश्य स्थान से उठती है,
और फैल जाती है।
सिर्फ
एक अदृश्य अस्तित्वहीन आवाज।
जब मनुष्य था,
तब मुहब्बत भी थी।
अब तो मिट्टी के माथेपर
जिन्दगी एक बोझ है।
इसे दुर्वह मत बनाओ।

साईन बोर्ड

हर एक शब्द
पूरे संस्कारों से परे
परिणति से पूर्व का संकलन
बीती हुई बात का
अधूरा पूर्णविराम।
अधूरी पहिचान ही आती है
हमारे काम
पहचान के नाम पर।

शब्द हमें पकड़ कर
धकेल देते हैं
अधूरी संभावनाओं के बीच।
हम सब सफर के साथी
अपनी-अपनी शब्द-सीमाएँ
लाँघने लगते हैं।

रेलगाड़ी के गुजरने से पहले
एक निस्संग रोशनी
रेल की पटरियाँ पोंछती
आगे बढ़ जाती है।
निस्संग उजाला भागता है
आगे।
रेलमें सब घोंसलों के साथ सफर करते हैं
मैं घोंसले से बाहर चलता हूँ।
केवल जीवन की अभ्यर्थना
के लिए
मैं विसंगतियों में पैदल ही भटकता हूँ।
अभ्यर्थना नाम है उस बदतमीज लड़की का

जो सिर्फ अपने गंजे सिर को
नये-नये कोणोंसे सजाती है।

शब्दों का पर्दा
धोखे के लिए होता है।
मनहूसियत पर
रंगीन नामों का परिवेप्टन करते हैं वे शब्द
जो अर्थहीन कंकाल मात्र
जड़े हैं बड़ी दूकानों के सामने।

बाशिन्दे

हमारे हवाई महल में
बहुत से दरवाजे हैं
जो हमें सिर्फ वहीं पहुँचाते है
जहाँ से हम चलना प्रारंभ करते हैं।

हम इस महल के बाहर भागते है
और
पहुँच जाते हैं हर बार
फिर से वहीं अंधे कमरों में।

हम अपना छिलका
अपना अंकुर
अपनी हवा
अपने दोस्त
अपनी दवा
नहीं पहिचानते
हम विभाजनों से उगने वाले बीज है।

हम परिचय के नाम पर
संशयों के अंडे गरमाते है
हम अपरिचय से
अपनी साँसें और धड़कनें छिपाते हैं।

भयाक्रान्त हम
अपने दरवाजों पर दस्तक देने वाले
मार्गदर्शक को नहीं पहचानते।
हम नींद के दिल में जागते हैं।
और सिर्फ सोते है
पैसे, प्रतिष्ठा पद प्यार
और प्रेयसी के
समाधि लेख के नीचे

अपना-अपना नाम
छाती से चिपका कर।

हमारे बिस्तरों पर
कर्ज का रुपया रेंगता है
हर एक नस को तोड़कर
वह
हमारा खून पीता है।

हमारी मोटरों में जलती है
लहलहाती खेती
रंगीन सवेरे
खूबसूरत शामें
लखनऊ, बेंगलोर, मद्रास, दिल्ली और बम्बई।

हम दावतों में खिलाते है
मासूम बच्चोंकी आँखें
हमारी जिन्दगी में
हमारा सब कुछ

दूसरों ने दान में दिया है।
परंपरा इतिहास
प्रगति-विकास
अध्यात्म विश्वास
और
किसी आनेवाले वर्तमान के सपनों की
संक्रामक बीमारियाँ
हमारी समूची बस्ती उजाड़ देती है।
हम इस हवाई महल से
बाहर नही जा सकते।

शहरवालोंसे

ट्रेनें स्टेशनों से बँधी हैं
स्टेशन सड़कों से
सड़कें शहर की धमनिया हैं।

खाली दिलों का समूचा व्यक्तित्व
लांघ कर चला जाता है
इन सड़कों से गुजरता हुआ
सारी गंदगी समेटता हुआ
दूर-दूर
उसे देश भर में फैलाने।

गुनाहगारों का मसीहा
हर स्टेशन पर
अपने मठ बनाता फिरता है।
हर एक धमनी में पानी बहाता है।
सारा देश सूंघने लगता है सिन्थैटिक ऐसेन्स
हिन्दुस्तान के इत्र के कारखाने
बिना फूलों के बना लेते हैं
गुलाब का इत्र
यह इत्र दिल के तंग कूंचों में
महकता है।

पेट की भूख
दिल के फरेबों में नहीं बिकती।
सिर्फ नकटी नाकें
उलझे बाल
हर सवेरे
साजिशों के नये पहलू ढूंढते हैं।

शहर का हर एक मोड
वक्तको भी

मोड़ देता है।
हर वक्त दहशत की
हवा की गरमी है
सिर्फ भगदड़ है।

चुड़ैलों के वशीकरण से
मुक्ति पाने हर एक भटकता रहता है।
शहर वालो,
तुम्हारा शहर ओझा है
वह शरद की चाँदनी
गटरों में बहाता है।

लोग
शहर के जादू से
गाँवों के रास्ते भूल जाते है

शहर की हर गोलाई में
केन्द्र और परिधिके बीच की
दूरी असमान है
इस असमानता में
बूढ़ी औरतें खिजाब करती है
गंजी लड़कियाँ नकली जूड़े खरीदती है
हर एक जन-स्थान में
आबनूस के काले बुत खड़े हैं
जिनके चेहरों पर परेशानी
खीज बनकर उभरी है।

एक तब अनेक।
अनेक और फिर वही एक।
एक और एक के बीच अनेक है।
सुबह
सड़क का सुनसान
अकेले साइकिल सवार ने तोड़ा था
कोई अकेला
रात को फिर जोड़ देगा।
इन दो अकेलों के बीच से गुजर गये
भूखे प्यासे
राजा-महाराजा
लड़के-लड़कियां
मातम और शादियों के
जुलूस।

एक अदना

हथियारों और नक्शों से लैस
बहुत सारे टैंक
मेरी छाती पर से गुजर गये।
हर एक सिपाही ने
मुझ पर गोली दागी
मैं उड़कर
नाक पर
जा बैठा।

पागल है।
मुझे मारने को वे सब
अपनी नाक ही काट डालेंगे।
मैं तो अदना
मच्छर हूँ,
उड़ जाऊँगा।

रुकावटें

पत्थरों,
कब तक इन पहाड़ी ढलानों से
चिपके रहोगे ?
चलो लुढ़को।

तुम
पिघलने और बहने से तो रहे
चलो नीचे प्रवाह में ही
अपनी जड़ता नहला लो।

लेकिन
तुम्हें हर गति के लिए
छेड़छाड़ चाहिए

तो लो
आज मैं ही तुमको
ठोकर मार कर चलता करता हूँ।

खलल

द्विधा ?
नहीं
लेकिन कुछ ऐसा ही
शायद अपने आपे का एहसास ।

या और कुछ ।
लेकिन कुछ जरूर ।

ध्वनि प्रसारण में
किसी अवांछनीय आवाज का प्रवेश
हमारे रंगीन ख़ाबों के बीच
राजनीतिक गालियों का ठूंसा हुआ पहाड़ ।
हम बीच मे ही काट दिये जाते हैं पके आम से
अपनी आन्तरिकता से
अलग कर दिये जाते हैं ।

कोई तोड़ देता है हमें
मोड़ देता है हमारी दिशाएँ
हमारी-गति काट देता है
रास्ता उलझा देता है
अनेक रातों के गुंजर में
यह कुछ जरूर है

जासूस

ये सपने
पीछा करने वाले जासूस हैं।

वन नदी तलाब के किनारे
मित्रों की मण्डली में
पंसारी की दूकान पर
सिनेमा पार्क या कॉफी हाउस में
शिकायत और प्रशंसा के
पिकनिक पांइटस् पर
विचारों की माया नगरी में
तर्कों को टेढे रास्तों पर।

मैं जहाँ भी छिपने जाता हूँ
इनकी घूरती हुई आखें
मेरा पीछा किये होती हैं।

मैं नई किताबों से पुराने पृष्ठ फाड़ता हूँ
उनका मुखौटा लगाता हूँ
इनसे अपने आपको छिपाता हूँ।
और
अन्तंविरोधों की गंदी और संकरी
सीलन भरी गलियों से
गुजरती हुई पगड़ंडी पर
लुकता छिपता
चौड़ी और सीधी सड़क की तलाश में भागता हूँ।

लेकिन मुझ से पहले उन पगडंडियों पर
चौड़ी सड़क पर
ये जासूस पहुँचे हुए होते हैं।

एकाकीपन

सोये हुए आदमियों के काफिले
अपने सारे फासले
नींद में खोये हुए
लाँघे चले जा रहे हैं।
बर्राते हुए
अपना बिस्तर उठाते हुए
ये हैं बेहोश यात्रियों के हुजूम सहयात्री।

मौसम खुशनुमा है।
आसमान की दरारों से फूटती है रोशनी
यह सोनेका नहीं जगाने का
रंगों की ऊष्मा पीने का
मौसम है।

वसन्त में यह सारा काफिला सोया हुआ
बीती हुई बरसातकी याद में
बरसाती गा रहा है।
गन्तव्य हीन
चला जा रहा है।
शायद मैं ही सो रहा हूँ
यही बेहतर है कि सोया रहूँ।
इस दहाई से तो यह इकाई बेहतर है

एक पुनर्जीवित क्षण

पानी के प्रवाह के तले में
पड़ी हुई स्वर्ण मुद्रा,
तुम
बहुत गहरे में
बहुत गहरे से झाँक रही हो।

समय का प्रवाह
विरल सघन
निर्मल
पंकिल।

अनेक भले बुरे
प्रभावों से रंगा हुआ
पल पल।
बहा जा रहा है।
तुम्हारी सुनहरी कान्ति
हर एक पल के अन्तस्तल को
वेधकर
ऊपरी सतह पर
आ झलकती है।

मैं किनारे पर
प्रवाह के कारण बनने वाले
तुम्हारे बिंबों के वलयों को
तभीसे देख रहा हूँ
जब तुम छूट गयी थीं।

कमलिनी के बीज-सी तुम
अंकुरित, पल्लवित होकर
कलियों के तीर-सी
पानी की गहराई का

अन्तराल और सघनता
वेधकर
ऊपर आओ
खिल पड़ो।

तटस्थ मैं
शीर्षस्थ आलोक
और पार्श्वस्थ परिवेश
तुम्हारे दर्शन की
प्रतीक्षा कर रहे हैं।

आत्म-निरीक्षण

संगमर्मर की प्रतिमा,
अनन्त के आम्र किसलय,
और पंच भूतों की कला
तुम
सबमें
आत्मोद्घाटन की अभिलाषा है।

मैं
दृष्टा सारे भूचालों का जो आदमियत्त हिला देते हैं।
अनुमंता सारे मूल्यों का जो सांस्कृतिक अकाल के वारिस हैं
साक्षी सारे युग का जिसमें कुहासा रेंगता रहता है

सबसे बचकर
यह सब देखता हूँ।
अपनी बेबसी पहिचानता हूँ।
अपने आपको जानता हूँ।

टूटे
बिखरे और
हात्या किये नये शब्दोंसे
मुझे,
यह सब समझना है।
यह सब कुछ
जो नदी में
टूटी हुई नाव के
अवशेषों-सा
विवशतापूर्वक
बहा जा रहा है।

यह मेरी पीढ़ी का भाग्य है कि
वह

देखने
सुनने
और समझने की इंद्रियों से
वंचित है।
इसीलिए उसमें
एकतर्फा घुटन है
तड़पन है
और एकपक्षीय तटस्थता है।
स्वरों की बेतरतीबी
और
निरर्थकता है।
यह मेरा भाग्य है कि
मैं
इस संवेदन
निवेदन
संज्ञाशून्य परिवेश में
बंधा हुआ
बंदी समूहका
सहयात्री हूँ।
काफिलेका एक अंश हूँ।

नयेका पुरानापन

अनजाने आयामोंसे
टूटती हैं बिजलियाँ ।
एक बीभत्स बेहोशी
एक बदसूरत सचाई
नुमाया हो जाती है ।

सारे,
आने-जानेवाले
सिकुड़ने-फैलनेवाले
उगने-गिरनेवाले
क्रियालापोंके पैर
लड़खड़ा जाते हैं ।

जुगुप्सा और भय
कर्ता और कर्ममें
आपसी संशय ।
वृक्षोंसे झर पड़ती हैं
बुझी हुई पत्तियाँ
'झर झर',
मनहूस रतौंधिया पतझर
संध्याओंसे लिपटी दोपहरी
डरी हुई कोंपलें,
पंजोंपर उझक कर
नयी-नयी लड़कियाँ
देखती हैं
मुंडेरोंके पार,
बहती हुई बर्फ
सूनी सुबहकी निर्जन सड़कें ।

नये वर्ष की तीन कविताएँ

(१)

कर्ता ठोकर खाता है
गिरता है
मर जाता है।
लेकिन फिर जी उठता है
भग्न शरीरमें नया कर्तृत्व।
कर्महीन क्रियाका प्रभाव
एक समर्पित वहाव
एक बेवसी,
नया चोला।

मकानमें चोरीसे
घुसा किरायेदार
ट्रेसपासर।
एक गुलाम
एक आरोपित
इच्छाओंका दास
कंप्यूटर।
नया वर्ष।

(२)

बापने कहा :—
मैं बीता हुआ प्रवाह
भूतकालका स्वरहीन
तड़पता हुआ मौन बांधनेवाला
बांध हूँ।
मांने कहा :—
मैं आनेवाले प्रवाहको निगले
ऐसी ओर-छोर रहित

अन्धी गुफा हूँ।
सन्ततिने कहा :—
हम अनाथ हैं
बांध और गुफाके बीच
प्रकट होकर
हर नये वर्ष
अपने अजन्मे जनकोंकी
याद करते हैं।

(३)

बासी ठिठुरे फूल
कूल पर
भूल खड़ी।
बड़ी देर से किसी सूर्य की
किरनों से सिर धोने आकुल
विपुल वंचना छिपा रहा है छितरा पतझर
नया साल यह
मौन मसीहा।

पहला यात्री

जागरण के स्वानन्दानुभव
भैरवी की चेतना
प्रभाती की दृष्टि
फूलों की गंधानुभूति
किरणोंका रंगीन आत्मसाक्षात्कार।

आनेवाली सुबहने
पहले अपना संकल्प
तुमपर ही परिप्रेषित किया।

नये भारतका यौवन
तुम्हारे शब्दोंमें
पहली बार गर्भित हुआ
तुमने पहली बार
भविष्यकी कविता_वर्तमान के
कानों में गुनगुनाई।

तुम
तुरही फूंकने
अपना माध्यम कंधेपर लटकाए
पगडंडी बनाते चले आये।

अब,
भिनसार धुंधलके और सूर्योदय
वर्षा ग्रीष्म और वसंत
तुम्हारा अनुगमन कर रहे हैं।

एक सार्वजनिक निवेदन

मैं उन अनेक अनाम पौधोंकी तरह
सूखी गीली बंजड़
या
पहाड़ी जमीनपर
जो भी जलवायु मिले
उसमें
अजाना
बे-पहिचाना
अपने आपमें
जीना चाहता हूँ।

जीनेकी गरमीको
मौतकी सीमाओं के परे ले जाना
भ्रम है।

मरने के बाद कोई याद नहीं करता
कुछ याद नही रहता।
मैंने रद्दी के रूप में बिकते
सड़कों पर उड़ते
अनेक नाम देखे है
जो
मरने के बाद जीने की हविश में
जीवनभर मरते रहे।
जिनमें लोग चना चबेना भरते रहे।

भूत बंगला

इस अन्तहीन नदी के किनारे
इन झरबेरियों के साथ
अनायास यह बंगला
उग आया था।

इस बंगले के जन्मकी
खबर सुनकर
बहुत-सी मासूम आत्माएँ
आ गयीं
इसमें निवास करने।

लेकिन
निरंतर तूफानों के चपेटोंसे
पछाड़ खाकर
बहुत-से वृक्षों के साथ
उन आत्माओं का भी
देहपात हो गया।
और यह बंगला
एक भूत बंगला बन गया।

अब इस बंगले में
सोने के पिंजरे में बंदी
एक हीरामन
एक तोता रहता है।
कहा जाता है कि
यह तोता
उन सब अतृप्तियों की
आत्मा है
जो इस बंगले में
शरीरकी खोज में भटकती है।

इस पींजरे की कुंजी
कहीं सात समुंदर से घिरे
नंगे पहाड़ की चोटीपर
रहनेवाले किसी जिन्न के पास है।
जो
बिना जन्मे ही भूत बन गया था।

तीन कविताएँ

(१)

मैं तेरी कमंद बाँधकर
बड़े-बड़े पहाड़ों की
चोटियाँ पार कर जाता हूँ।

अँधेरी गुफाओं की
अन्तर्विहारिणी आदिम
चट्टानोंपर
बना देता हूँ
अपनी विजय के चिह्न।
जी लेता हूँ
अपनी यह उलझन भरी
जिंदगी।
चल लेता हूँ
अपना रास्ता
तेरे सहारे।
ओ मेरे जीवनकी उमंग
लुटेरोंके इस
जंगल में मेरी उंगली
मत छोड़ देना।

(२)

वर्तमान
मुझे कानूनोंकी सूलीपर
टाँगकर
तुमने वर्तमान और भविष्य
की हत्या की है।

(३)

मुझे मारकर तुमने
युगको मारा है।
मैं वर्तमान हूँ तो मेरी
छाया तुम्हारा भविष्य है।

मेरी छाया

वह पीछा करती है
तूफानी रातोंके
आंदोलनमें डूब कर
अपनापा भूलनेवाले
मेरे अपने मन के साथ ।

वह अपने दाँत निपोरती है
सिलवटें भरे सिरपर
उभरने और मिटनेवाली
माथे की
भौहों की
और गुनाहों की
सारी वंचनाको मुझ तक
पहुँचानेवाले दर्पणके साथ ।
वह मेरी अदृश्य छाया है ।
जिसमें तुम्हारा सुस्त
गन्तव्यहीन दिल धड़कता है ।

कर्ण

आगे बढता हुआ मार्ग खुला है
लेकिन मार्गोंपर जानेवाले
रुक गये हैं।
सब कुछ मुट्ठीमें बंद है
खाक या लाखकी दौलत।
खिलते हुए फूल
उगता हुआ सूरज
घोंसला बनाती हुई गोरैया
उड़नेवाली रंगीन तितली
बरसती हुई बीर-बहूटी
इन सबको मेरी परेशानियोंका
मातम है।
मैं पहाड़ों नदियों घाटियों और मैदानोंमें
बहता हुआ।
इन गटरोंके मेनहोलमें
बहनेवाली तहज्ञीबसे
खिंचा जा रहा हूँ।
इस अंदरूनी दुनियाके
केन्द्रमें
बुझे हुए चाँद-सितारोंकी राख
रोशनीके नामपर बिखरी पड़ी है।
मेर पिंजड़ा
धीवरकी खोजमें
न जाने कितनी जालोंसे छूटकर
बहता चल रहा है।

तनहाई

समूहमें मैं हूँ
शताब्दियाँ मेरा कवच हैं
ये मुझे डूबते सूरज की
परछाईं में अकेला बना देती हैं।
इसपर छाया संकुल परिवेश में
प्रकाश का टुकडा मेरे हाथोंसे गिर पड़ा।
मैं आतुर हूँ कि
कब्रस्तानों में निद्रित वंचनाओंको
वह प्रकाश का टुकड़ा जीवित कर दे।
हर एक हड्डी का कंकाल
इस हुजूम को बढती पामाली से
मुक्त कर दे।
हर एक आदमी अपने अकेले
व्यक्तित्व की तलाश में
गंगाका विस्तार समेट ले
और
कह उठे कि
तनहा इकाई समूहों की माता है
अकेला सूरज उगता है।
हर जर्रे को सूरज बनाता है।

अभिनेताका आत्मकथ्य

किसी मनहूसने
समयसे पहले ही पर्दा उठा दिया
मंचपर बनने और पूर्ण होनेकी प्रक्रियामें व्यस्त
अधबने दृश्य उघड़े हो गये ।
रंगोंकी रगोंमें
इकरंगी प्रकाशका रक्त भागने लगा ।

सबमें असमय ही
जीव जाग उठे ।

क्या करें विवशता है ।

गलियारे
संकरे रास्ते
वृक्ष– झाड़ियाँ
पगडंडी राजमार्ग
सबने अनपेक्षित अचानकके लिए
दिल मज़बूत कर लिये
अपने अधूरे निराकार दिल ।

नीला आसमान ही उस वक्त खिला
बादलका बच्चा
धीरे-धीरे अपनी छाया फैलाने लगा
खाली कुर्सियोंकी कतारोंपर ।

सब अभिनेता हक्के-बक्के
अपनी-अपनी मूछें
अपने-अपने मुकुट
अपने-अपने रंग
अपने-अपने शस्त्र और कवचको खोजते
सज्जा कक्षामें जा छिपे ।

यह सब आँखोंकी प्रतीक्षामें
सामने आया ।
आँखें कहाँ हैं ?
इस अकस्मात-से मैं भी पार्ट भूल गया
अब रंगमंचसे कुरूप नंगेपनका पार्ट सीखूँगा
आंखें मुझपर लगी हुई है ।
रिक्त कुर्सियों की
निराकार अपलक और
आन्तरिक शून्य में भटकती हुई
अस्वभाविक विचलित वातावरण की आँखें ।

तुम्हारा सिलवटोंवाला मुँह
सड़कके तांगे स्कूटर
मोटर
हाथगाडी ठेलोंसे बचता हुआ
मेरे पीछे रेंग आया
दर्जीकी दूकान तक।
एक अधमरी भूखी नागिनकी छाया
दर्जीके चेहरेपर पड़ी
उसका चेहरा जहरसे स्याह हो गया।
मैं कुर्ता सिलवाना भूलकर
दर्जीके चेहरेपर
तुम्हारी भूखी आँखोंकी लौ देखकर
काँप उठा।
सिहर उठा।
क्या दर्जीका चेहरा
किरानीका मुखौटा है?
क्या यह वही शीशा है
जो हररोज तुम्हारे सामने होता है?

सिलसिले और संदर्भ

नीद अचानक अनिश्चित समय पर
उचट जाती है।
गलीमें चलते हुए पाँवों के तले
मिले जुले
चौमुहाने डर
इधर उधर चिचिया उठते हैं।

रंगीन दुनिया
निगेटिव फिल्म
मनहूस भद्दी
उल्टी नकल।
सारे इलहामी पैगामों में होती है
आदिम चट्टानों की बेरुखी।
लटक जाते हैं सब
जिन्दा मुरदे
इन चट्टानोंकी अतल गहराईमें।

डॉक्टर के प्रश्नो से निकलता है डर का रोना
इस दुनिया में सब का होना
किसीका न होना
बराबर है।
डॉक्टर आखिर पेट का गुलाम है
भूख के डर से ही
वह बीमार को डराता है।

दिलकी धुकधुकी में
रुँधी हुई आवाजे सिसकने लगती है
उचटी हुई नीद
घावों पर नमक का पलस्तर चढ़ा देती है।

लहलहाती फसल का पका हुआ दाना
काला कुरूप
किसीकी बंदूक का छर्रा
चुभ जाता है
ठीक उस निशानपर जहाँ कभी तिरछी नजरें चुभा करती थीं।

सड़कों के किनारे पर
सूनापन उजागर
खड़ी हुई है
बिजलियों की कतारें।

सारे लावारिस कुत्ते
रोने लगते हैं
सूनेपन से ऊबी हुई रोशनी में।
हारे थके
होटल के लड़के
पुलिया की मुंडेर पर
बैठकर बीड़ी पीते हैं।
अचानक उचटी हुई नींद की छाती को रौंदता हुआ
कोई भारी भरकाम अधूरापन ठिठकता है
उन लड़कों की बीड़ियाँ छीनकर पीने लगता है।
दिन भर से जागते हुए असंभव
उचटी नींद में सोने लगते हैं।

सपने, तपेदिक के कीड़े
बेसिरके इम्तहानों के झगड़े
चिल्लाती हुई बिल्लियोंका मातमों में सकपकाई बूढ़ी परंपरा।

ट्रेनें दूरसे सीटी देती है
धीरे-धीरे गहरी नीदों को
सुई से बीध कर
निकल जाती हैं।

कहानी का एक हिस्सा समाप्त होने से पहले ही
दूध वाले की दस्तक
अनिश्चित उचटी नींद को बाँध देती है
सुबहों के सिलसिले से।

बच्चा

बच्चे के हाथ में गुब्बारा रंगीन
रबर का
उड़नगैस से फूला हुआ
गोल गोल बिना पंखुरी का फूल ।
रंगीन सितारा
बेचारा चाहता है उड़ना आसमानमें ।
आखिर रक्खा भी क्या है
इस जहान में
दुःख
दर्द
बेबसी
बस, यही सब कुछ था
भूख और बीमारियों के कुनबे
मकान में
लेकिन यह बच्चे की बेदाग गिरफ्त है ।
कमसिन उजली साफसुथरी
ओस की बूंद पहाड़ की आत्मा थामे है ।
छल और फरेब से अछूते
बहुत सारे उत्तरोंने
पूछ लिया एक चिरन्तन प्रश्न आन्तरिक पुर्नवसन का ।
गुब्बारा मासूम उंगलियोंसे झगड़ता रहा ।
दुनिया की कड़ुवी जबान से
फूलों की रंगीन मिठास का झगड़ा
सारे विश्वासों से
हकीकत का झगडा
बिन बोई हरियाली जो फैल कर
चट्टानों की सूखी सतहे हरी-भरी कर देती है

उससे भी झगड़ने वाले बहुत से सदमे हैं।
धरती पर झगड़े हैं ही झगड़े है

गुब्बारा ऐसी धरती पर कैसे रहे
कैसे सहे सब उलझनों को।

धरतीपर बीता हुआ क्षण
नये क्षणोंकी पैकेट को
देता रहता है
बूढ़ी दुनिया जिसे
बच्चे के साथ बैठकर चबाती है।

यह रस्मिया दावत है

उलझा हुआ कमसिन उंगलियोंमें
गगनाकांक्षी गुब्बारा
नया बच्चा
बूढ़ी धरती
बंधे हैं अनेक
परंपरा और
अपरंपरा के
धागों से।

वह जो तुमसे बाहर है ।

उसे रहने दो
इन चटखते हुए फूलोंकी
खुशनुमा मासूम नज़रोंकी बाँहोंमें ।
उसे डूबा रहने दो
इन बदलती हुई फिज़ाओंके उतावलेपनमें ।
बस, तुम देखते रहो
बस, देखते रहो उसकी व्यस्तता
उसे कुछ न कहो
वह तुम्हारी कुछ न सुनेगा ।

तुम्हारी गंदी गालियाँ तुमपर
लौट आयेंगी

तुम सचमुच दूसरोंके दायरोंमें
न कुछ हो
अजनबी हो ।
तुम दूसरोंके अर्थ चुराते हो ।

उसे गाने दो अपने श्रमकी सफलता
खुले हुए मैदानों को उसने आसमानी एकतर्फा
बेलगाम हकीकत से रंग दिया है ।

तुम अपनी बेरंग गंदगीपर खीजते हो ।
रिक्त शब्दों के केंचुल पहनते हो ।
कफनमें सोते हो ।

उसे अपनी बेगाँठ
ज़िन्दगी जीने दो ।

हवाओं को
फिज़ाओं को वह पी रहा है ।
अगर तुम को जीना है

ो उसकी भुजाओं के
दावनमी स्पर्श से मरना सीखो
उसकी ठोकरोंसे
आकाशगंगाकी तरह
बेहिसाब पैदा होना
बेनसीब बिखरना सीखो।

मोमबत्ती जल रही है

(१)

दूर थानेमें खड़ा है पहरुआ
गिन रहा है वक्त के धीमे कदम।
हिल रही हैं नीम की एकान्त शाखें।
सब तरफ निःशब्दता साँप
अपना फन उठाकर
चाँदनी की बाहुओं को सूंघता है चूमता है।
छप्परो पर चाँदनी हारी बिचारी
भीतिग्रस्ता रो रही है।
आ रहे है चार आँसू फूल की खिलती कली को।
वह रहा है
गांव के सोये चरणको चूमता
सुप्त नाला एक
खो गयी है आँख।
रात दिल
याद आकांक्षा।
चेतना,
चूख
मोमबत्ती
मूक दीवट अंधेरे के अवयव।

(२)

आ रही मंजीर की टंकार
ढोलक की धमक को चीरती
गाँव के चौपाल में मदमत्त ग्वाले
गा रहे हैं फाग।
खेत में सठिया गये हैं
ज्वार-जौ के ठूंठ।
बाँस का वन ढूंढता है बांसुरी की तान।

गिरि शिखर के धवल मन्दिर द्वार पर
झूलता है दीप की पीली किरण का क्षीण पर्दा।
तप रहा जोगी जलाकर सामने अपने अलाव
फूंकता है शंख स्वरमय
किन्तु मन को वासना धूमित वलय
घेरता निर्द्वन्द निर्भय।
प्रेत आकृति
उँगलियाँ काली दिखाती घूमती हैं पर्वतोंपर खोजने खोये हुए तन

आ गयी है रेल पुल पर
जीवन की सफर
जलती मोमबत्ती
पी गयी है रात आधी।

(३)

मोमबत्ती जल रही है
चल रही अंधी कहानी।
उड़ रहा है मन कहीं वन-बाग।
वक्त की जंजीर के बंधन।
यह नये जीवन-भवन की नीव,
सुख की कल्पना की यह नयी दीवार
स्वप्न के संसार–
जिन्दगी के प्यार।
संघर्ष-मछुआ,
डाल बलिया
गा रहा है गीत।
मैं फँसा,
भाग जाना चाहता हूँ निगल काँटा।
मोमबत्ती आँसुओं में
तन घुलाती।

गांव की सूनी गली
वज उठे हैं कुछ कदम।
गूंजती आती कहीं पर दूर से
तीर्थ यात्रा के लिये
निकले
पुराने पापियों के
भक्तिगीतों में
विसर्जित
मत्युभय की गूंज।

हम लोग

नीला बिलकुल साफ नया आसमान
हमारी दुनिया से दूर
हमारे शहरों गावों प्रदेशों और देशों में
पनपने वाले
कटीले तारों शहतीरों
झगड़ों और जंजीरों
से बेखबर

हमारे यंत्रों से निकलने वाले
बीड़ी के उगले हुए
कश और कशमकश धरतीपर ही है।
आसमान बिलकुल
धुला हुआ कोरा
नया कपड़ा है।

कुछ पक्षी हैं ऊपर
उनकी नजरों ने
सूरज और चाँद की किरनों को
कृतार्थ कर दिया है।
चमकना व्यर्थ नहीं गया।

हम लोग
आसमान में खुराफातें लेकर उड़ते हैं।
नयी फसलों पर
कीटाणु नाशक औषधियाँ
छिड़कने
आसमान में उड़ते हैं हम।
नयी फसल फलियाँ और फूल सूख जाते है
बीजों का तत्व मिट जाता है

हमारी दवाओं की
इन बौछारों से।

अज्ञात नियति के भय का बोझ
जड़ हो रहे हैं हम
उस पत्थर के ढेले की तरह
जिसे पहाड़ने अपने शरीर से उखाड़कर
अपनी नियति से दूर कर दिया है।

नीला आसमान
नये स्वेटर पहने हुए भोले चेहरे बच्चों के,
सब बिलकुल साफ धुले हुए,
कोरे।

हम लोगों की सोहबत से
आसमान के दिल में नासूर हो गये हैं।
अब वह बच्चों के साथ है
उनकी हंसी से अपने नासूर धोएगा।
हमारे भाग्यों पर रोऐगा
किरनों में रंग पिरोऐगा
और दे डालेगा
अपना विस्तार
कहेगा
लो बच्चो, इबादत की
नई इबारत लिखो।
तुम्हारे पुरखे बडे अभागे थे।
बेचारे सिर्फ रोते रहे।
आओ, मैं तुम्हारी धरती को और तुम को
गोदी में उठा लूँ
वह नन्ही मुन्नी है।
तुम नये मुन्ने हो।

प्रतीक्षा

कहाँ तक पर्दे लगाओगे
अपनी खिड़कियों में अपने दरवाजों पर।
कहाँ तक बंद रखोगे आँखें।

कबतक बालकोंको
अपनी घुड़कियों से चुप रखोगे।

सवेरा
पर्दे और खिड़कियाँ पार कर
भीतर जरूर आयेगा
घर आँगन मुंडेर
सबको रंगेगा
मनहूसियत मिटायेगा।

दूकानदार सवेरा पहचानतेहैं
देखो न
उनके तराजू बाट गल्ले और गद्दियाँ
नहा धोकर तैयार हैं।
और तुम
न जाने क्यों अंधेरा बटोरने
बौखलाये से भागते हो
अपने अन्दरूनी बियाबानो मे।

लिहाफों की तहो पर तहें
लगा रहे हो सोये हुए जाग रहे हो
आदिम चेहरों पर की
छाया मिटानेवाली
किरनें पड़ने दो।
मरने दो
घुग्घू चिमगादड़
सूअर और सियारों को।

तुम्हारा विलायती कुत्ता
तुम्हारे दरवाजों पर छलकती
धूप की तरफ
पीठ किये बैठा है
तुम जब जागोगे
वह तुम्हारे साथ हो लेगा
हवा खोरी के लिए।

हवाखोरी

हम शहर से निकल कर आ गये
अछूते जंगल में
पहाड़ी के किनारे
नदी के सहारे
ऊंघते हुए
सदियों से खड़े हुए
वृक्षों की कतारों के बीच ।
हमने शहर से भागना चाहा
लेकिन
साइकिल-स्कूटर-टैक्सी-कारें और
बच्चों को कुचलते हुए ट्रक
हमारे साथ दौड़े आये ।

बिजली के खंभों से
लंबे अन्तरालों को नापता
दौड़ आया
हमारे कुत्ते के साथ
एक और अशरीरी विलायती कुत्ता ।

तुम्हारा विलायती कुत्ता
तुम्हारे दरवाजों पर छलकती
धूप की तरफ
पीठ किये बैठा है
तुम जब जागोगे
वह तुम्हारे साथ हो लेगा
हवा खोरी के लिए।

जीवन मुक्त

आस पास मशीनों की फसलें
एक बड़ी मशीन में
उगाई हुई मशीन की खेती।
इसे उगाया गया है
रक्त पी
पल्लवित होने के लिए।
मैं मशीन चलाने वाली मशीन हूँ।

मशीन को सुख-दुःख नहीं होते

क्षणभगुर
जीवन से निर्लिप्त
निर्विकार
मशीनों के बीच
खड़ा हूँ मैं।

वर्फ का समुद्र

आये हुए पत्र ने गरमी सोख ली,
रही सही।
अब गतिविधियों का समुद्र
पूरी तरह जम गया है।
आने जाने वाले जहाजों को
दूर से ही जाने दो।
मल्लाहों को अपने देश के गीत
दूर पर ही गाने दो।
जमे हुए पानी की गर्मी
अब लौट कर नही आयेगी।
न आयेंगे वे उगते हुए सूरज के
रंगीन उजाले
समुद्र अब ठोस पत्थर होकर
सो गया है
आत्मस्थ हो गया है।

जीवन मुक्त

आस पास मशीनों की फसलें
एक बड़ी मशीन में
उगाई हुई मशीन की खेती।
इसे उगाया गया है
रक्त पी
पल्लवित होने के लिए।
मैं मशीन चलाने वाली मशीन हूँ।

मशीन को सुख-दु.ख नहीं होते

क्षणभंगुर
जीवन से निर्लिप्त
निर्विकार
मशीनों के बीच
खड़ा हूँ मैं।

तलाश

तमतमाती दोपहर के अवांछित चुंबनों से लज्जित
वसन्त की परेशान हवाएँ
शिशिर के पत्तों की आकृतियाँ बीनती हुई
सड़कों पर सो गयी
अदृश्य हो गयी हमारे पांवों के नीचे
हमारे शरीर
हमारी अनुपस्थिति छिपाये रहे
वे सब के देखते चलते रहे
अपना मुंह छिपाए अपने आपसे।
भीतरसे हम भटकते रहे
सुखद घटनाओं के
कब्रस्तान में
हर एक मरे हुए मासूम माहौल के सिर पर
समाधि लेख गाड़ने के लिए।
शब्द छैनी-हथोड़ा
और
मृत्युहीन शिलाओं की तलाश में
ऐतिहासिक मकबरों की ऊँची छाया में
अपने अज्ञात अंतर्पुरुष की समाधि
तलाशते रहे।
इन टार रोड के सहारे बहती हुई
अदृश्य मैली और घिनौनी शहरी गटारों मे
अपने साबित आदमी का बेहोश शरीर
सब की नजरें बचा कर खोजते रहे
युग के अनात्म अंधियारों में
हर बार जो उठने वाला
सजीदा मन
हम वचना के छुरों से रेतते रहे।

दोपहर की ये हवाएँ बंधनों से फिसलीं
छूट कर भाग निकलीं
अवांछित चुंबनों का बोझ उठाये
अपनी लंबी साँसें
अपनी विवशता
हर एक चौराहे की भीड़ पर बिखेरती हुई।
ठोकर खाकर गिर पड़ीं
बेहोश हो गयी
भुजाओं में मसली हुई
ये निरर्थक लाचार और निराश्रित हवाएँ पावों के नीचे
अदृश्य हो गयीं।
हमारी अपने अंतर्पुरुष की समाधि की खोज
अभी समाप्त नहीं हुई है।
हम नहीं जानते हमने उसे
कहाँ दफनाया है।

आत्मोपलब्धि

मैं अपनी खोज में चला
चोला झाड़कर
बोझ का गट्ठर
दूसरों के कंधोंपर
लाद ।

किन्तु मिले वे ही सामने
दुःख, भय, संशय
सारे अनिश्चय :
जिन से डर कर मैं
इस अनजान शहर के,
अनजान होटल मे
अजनबी बन कर
आ ठहरा था ।

मैं अपने चेहरे से
इतिहास-भूगोल की झुर्रियाँ
मिटा नहीं पाया ।

ब्रह्म को खूंटीपर नही टांग सका

न बदल पाया रंग चोले का
मेरी प्रार्थित दयाओं मे
शख-घटा और आरती की गूंज का
रूप लेकर झलका
सदियो का दास
सूट-बूट, नेकटाई, चश्मे के नकाब के नीचे
युग और सदियाँ कराह उठे ।
सर्द मुल्कों की लपटें भड़क उठी मेरी साँसों में।

अपनी तलाश में
आज मै किसी अनजान जंगल में
भटक गया हूँ

पीछे छुटा हुआ कोई
ललकार कर कहता है
"तुम हो सिर्फ जानवर
आदिम पशु।"

प्रतिध्वनियाँ
प्रतिध्वनियाँ किसी
ब्लडप्रेशर के बीमार की
उचटी हुई नींद की बर्राहट।

तपमान और मैं

अंधेरे का कंबल फेंक कर
ताज़ी किरनें
ओस की चादर पर खेलने लगती है
'लोटस ईटर'।
फूलों से चुहल करने लगते हैं बच्चे
लिहाफ फेंककर।

मनमौजी हवा
पानी का अदृश्य रेला।
हर एक मौसम के दिल की
गर्मी, सर्दी और नमी से भयभीत।
सहमी-सहमी-सी
सलज्जा वहू।

काले आकाश का समुदर
डूब गया रोशनी के समुदर में
हरियाली से रंगी हुई
एक सोने की गेंद
एक धरती
अपने दिल की रोशनी से नहाई हुई
भटकती-सी

ये सब खुश है
इन को अपनी खुशी की तलाश है।

मैं
इस समय में
इस हवा में
इस मौसम में
फैलता सिकुड़ता हुआ

छोटी कविताएँ

दोगरें

(१)

उमस में
फूलों की भाप बन गयीं घटाएँ
बिजलियां चमकी
कड़की
वसन्त, शरद और पतझड़
औलादों को जवान बना कर
भाग गये।
छोड़ गये बे-सहारा
तूफान की बाहों में।

(२)

आसमान साफ हो गया
तूफान चला गया
रह गया कीचड़
बदबू
मछलियों की
आंखों और पसलियों की
कमसिन बदबू।

तटस्थता

मैं तटपर ही बैठा हूँ
घबराओ मत
उतरो गहरे।
मै सारे तटों से
परिचित हूँ
जब और जहाँ भी जब तुम

मील का पत्थर

(१)

इच्छा होती है सबेरे खूब देर तक सोने की।
चिन्ता और आत्मपीड़न को
भुलावा देने आयी हुई
भिन्सारे की झपकी के
आवरण में दुबका रहने की।
लेकिन
रात और दिन
नींद और जागरण
दोनों अनुगामी है
सहगामी नही।

(२)

दूरी पर कही छूटे हुए पहाड़ों के
काफ़िले तैर कर सामने आते है।
रह जाते है सारे अहसासों के चेहरे
धुँधले-धुँधले
नदियों, घाटियो में
भटक कर खो जाता है
व्यक्तिगत इतिहास।
अपने भाग्य को भला-बुरा कहने की
इच्छा होती है
लेकिन विगत और वर्तमान
दोनों अनुगामी हैं
सहगामी नही।

(३)

मैं विपरीत पगडंडी का यात्राकांक्षी हूँ
दिशा-दिशा के आमंत्रण से टूट रहा हूँ

सवेरा

हकीकत सड़क के इंजन-सी
बेरहम होती है।
लोग जब बीमार और नकुआए
सूरज से रोशनी के लिए
अपने हाथ पसारते हैं
तब
पार्क में खड़े हुए कलाकार के
बस्ट स्टेच्यू के चेहरे की
पेशियाँ सिकुड़ कर
गोलाई को त्रिकोण बना देती है।

पत्थर की अपलक निगाहें
उठी की उठी रह जाती है
जम जाती है
दृष्टि आसमानी कुहरे में।

गली के उखड़े पत्थरों से
त्रिपसोल की
आवाजों से भूकंप आ जाते है।

पुराने राजवाड़े मठ-मन्दिर
और मस्जिदें हिल उठती है।

कोई देह बेचकर भिनसार को गालियाँ देता हुआ
अपने पटसन के कमरे में लौटता है।

अपने चेहरों की मांसहीन हड्डी पर
पावडर चुपडकर रिक्त बेशर्मी
छिपाते है लोग।

अर्थ भंजित वाक्यों की
तह में सांस्कृतिक दरिद्रता

मन के बंद कमरे में

(१)

बंद कमरे में
रंगीन मफलरों से लिपटे हुए फूल
जबरदस्ती घुस आते हैं
दगा करते हैं
शोर मचाते हैं
भागते हैं
दौडते हैं
पूरे कंठसे गाते हैं ।

कमरे में
ये फिल्में
एक साथ एक ही दृश्य में ।
चित्र के चलते हुए रूप
प्रतिबिंबित हो उठते हैं
एक ही चलते फिरते
आलिंगन में ।

(२)

मैं राहपर अकेले चुपचाप
चलने का आदी हो चुका हूं ।
तुम गंतव्यका आश्वासन मत दो
मुझे गुमराह मत करो ।

मरण से परे

सिगारेट के चूसे हुए धुएँ के
व्यर्थ छल्लों में
उलझी सार्थक अनुभूतियां
हवाखोरी के लिए
आसमान छूने चली है।
धरती की चेतना लेकर
नाना रूपों में
नाना रंगों में।

ये सत्वहीन क्षयी छल्ले
फैलकर टूट जाएँगे

ये निराश्रित दिशाहारा अनुभूतियाँ
मंडराती रहेंगी
अन्तरिक्ष विमान की
मरी हुई मशीनोंके ढाँचों-सी
अनुशासन से परे।

एकान्तमें भटकती हुई
तनहीन अतृप्त आत्माओं सी
इनकी मुक्ति नही होगी।

घुटन, लाचारी, और बेचैनीकी
ये लावारिस सन्तानें
सुख की राह में शहीद
धुएँ के वलयों के कच्चे बंधनों मे
समर्पित।
ये अनजाने और अनदेखे ससार के
धुंधले चित्रों से सजी हुई अनुभूतियाँ
धुएँ के वलयों का तन त्याग कर
धरती पर उतरने के लिए उत्सुक
भटकती रहेंगी अनन्त में।

मिलते हैं
मात्र उलझे हुए अक्षरों में
रहस्य के साये।
अक्षर अक्षरसे उलझता है
अक्षर कबूतर से उलझता है
कबूतर हवाई जहाज से टकराता है।
हवाई जहाज अक्षर हो जाता है
कबूतर में हवाई जहाज
हवाई जहाज में कबूतर
नही आग नही अक्षर
नही आग
नही हवाई जहाज
नहीं नहीं कबूतर

शहर में

भागते हुए साइकल के पहिये
पीछे भागते हुए
सिपाही
भगदड़ में टूटती हुई, भागती हुई सीधी उलझी रेखाएँ।

ये सूरज के हाथ, आँखों में उजेला
अंधेरे में दिल।
पहाड़ी आंखोंपर
गुलाबी पावडर
सब तरतीब बेतरतीब
रेंगते हुए बरसाती घिनौने कीड़े
कपड़े बदलते हुए लोग जुकाम के रोगी
थिएटर की मसली हुई चेयर कुशिनें
अखबारों में मारा-मारी चोर बाजारी की ख़बरें
मुर्दादिल हिन्दुस्तानी कारकूनी जनता।

उजाले की भूख

इस धुमैले वादल ढंके
आसमान से रंगों की याचना व्यर्थ है।

फूलो मत पसारो अपने अन्तर।
जो संचित है उसे लुटा दो।

यह सवेरा बिलकुल नया नहीं है।
आदतन चलने वाले सारे कारवार का
पुरानापन अभी गया नहीं है।

सब वही है
वही
घिसा-पिटा
लुटा-मिटा
पैदा होने
जीने और मरने का क्रम

मभ्रमों से कीलित परिश्रम
अनायास पलीपर सदियों का बोझ

आज लोग उनके चेहरे भूल गये
जो खून के नये उबाल से बनाते थे सपनों की तस्वीरें।

खतम हुई महद् नाहक वाक्योंकी तासीरें
धीरे-धीरे यह न दिखाने वाला सूरज
आदतन डूब जायेगा।

उजाले की भूख
अपनी आंखों में सहेज
तुम भी सो जाओगे
इसी तरह अनजाने अचीन्हे अस्तित्व की सीमा पर।
चिन्ता मत करो मैं भी तुम्हारे साथ भूखा हूँ।

आगामी प्रकाशन

१) ················ ?

(कविता-संग्रह-२)

– हरिनारायण व्यास

२) मीड़ की गमक

(कविता-संग्रह)

– चन्द्रशेखर शास्त्री

३) साहित्यालोचन

४) छाया की धूप (उपन्यास)

– मुरलीधर जगताप